

# प्रयोगशाला में जीवन का निर्माण - कुछ सवाल

डॉ. डी. बालसुब्रमण्यन

**हा**ल ही में मैंने एक लेख लिखा था (स्रोत फरवरी 2009) जिस पर पाठकों की कई प्रतिक्रियाएं प्राप्त हुई हैं। यह लेख था प्रयोगशाला में जीवन के निर्माण को लेकर। इस लेख में एक बात तो यह कही गई थी कि व्होलर ने जब प्रयोगशाला में अमोनियम सायनेट को गर्म करके यूरिया बनाया था, तो इस जैविक अणु का संश्लेषण करके वे 'जीवनी शक्ति' की धारणा को उखाड़ फेंकने में सफल रहे थे। 'जीवनी शक्ति' की धारणा यह थी कि कुछ पदार्थ सजीव होते हैं और उन्हें सिर्फ जीव ही बना सकते हैं।

आगे चलकर मिलर और उरे ने दर्शाया था कि अमीनो अम्ल और यहां तक कि जीवन की मूलभूत इकाई यानी डी.एन.ए. अणु के कुछ हिस्से भी प्रयोगशाला में बनाए जा सकते हैं। उन्होंने कांच के एक बंद फ्लास्क में पानी, अमोनिया और कार्बन डाईऑक्साइड भरी थी और उस पर विद्युत चिंकारियों व विकिरण की बौछार की थी।

इस पर एक टिप्पणी यह थी कि यूरिया हो या डी.एन.ए. अपने आप में तो ये निर्जीव अणु ही हैं। एक अन्य टिप्पणी यह थी कि यह नहीं कहा जा सकता कि

यूरिया के संश्लेषण के साथ 'जीवनी शक्ति' का सिद्धांत ध्वस्त हो गया था और यह सवाल पूछने का मौका आ गया था कि प्रयोगशाला में जीवन का निर्माण कब होगा। आपको यह फैसला करना होगा कि क्या यूरिया का एक अणु जीवित होता है और यदि यह जीवित नहीं है तो फिर किसी चीज़ के 'ध्वस्त' होने की बात ही पैदा नहीं होती।

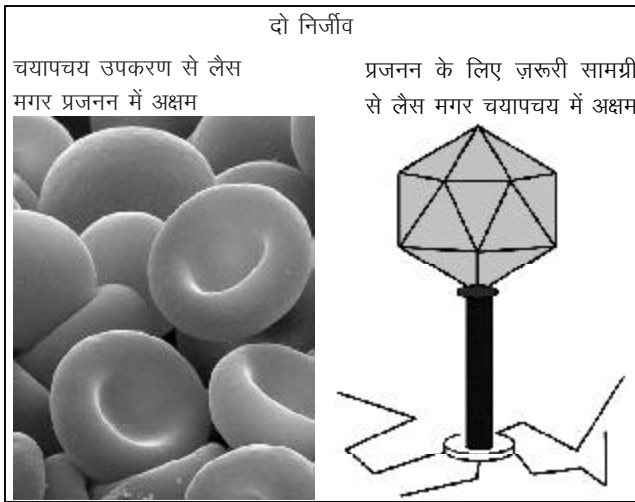
ये सवाल सचमुच हमें जीवन की परिभाषा पर ले आते हैं। किसी चीज़ को जीवित कहा जाए, इसके लिए उसे दो करतब करने होंगे। एक तो इसमें अपने ही जैसी और चीज़ें बनाने की क्षमता होनी चाहिए। यानी इसमें प्रजनन की क्षमता होनी चाहिए। और दूसरी चीज़ यह है कि उसमें अपने पर्यावरण के साथ पदार्थों व ऊर्जा का आदान-प्रदान करने की क्षमता होनी चाहिए।

ये दो गुण - प्रजनन व चयापचय यानी मेटाबोलिज़्म - सजीवों को परिभाषित करने के लिए अनिवार्य और पर्याप्त शर्तें हैं। यहां महत्वपूर्ण शब्द 'अनिवार्य और पर्याप्त' है, और इसी के चलते वायरसों को जीव जगत में शामिल नहीं किया जाता है।

वायरस में अपने प्रजनन के लिए ज़रूरी सामग्री

डी.एन.ए. या आर.एन.ए. के रूप में होती है। मगर यह स्वयं अपने आप चयापचय नहीं कर सकता। इसे अपनी प्रतिलिपि बनाने के लिए किसी मेजबान कोशिका की ज़रूरत होती है। इसे उस कोशिका की मशीनरी का उपयोग करना पड़ता है। और वह कोशिका सजीव होनी चाहिए, जो अपने पर्यावरण के साथ आदान-प्रदान कर सके। तो वायरस निर्जीव है।

यही बात कई अन्य कोशिकाओं पर लागू होती है जो हमारे शरीर में होती हैं और हमारे लिए बहुत उपयोगी होती हैं। लाल रक्त कोशिकाएं एक उम्दा उदाहरण हैं। अपने



निकट सम्बंधी सफेद रक्त कोशिकाओं के विपरीत लाल रक्त कोशिकाओं में प्रजनन की क्षमता नहीं होती। लाल रक्त कोशिकाओं में प्रजनन के लिए ज़रूरी डी.एन.ए. अणु नहीं होता। इस तरह से वे निर्जीव हैं। जैसे एक वायरस एक निष्क्रिय गिलाफ है जिसमें प्रजनन के लिए ज़रूरी आणविक इकाई मौजूद होती है, उसी तरह लाल रक्त कोशिकाएं निष्क्रिय झोले हैं, जिनमें पर्यावरण के साथ ऊर्जा के आदान-प्रदान के लिए ज़रूरी अणु मौजूद हैं।

चलिए अब यह सवाल पूछते हैं: यदि हम किसी वायरस का डी.एन.ए. लाल रक्त कोशिकाओं में प्रविष्ट करा दें, तो क्या होगा? क्या तब एक सजीव बनेगा? जवाब है कि दिल्ली अभी दूर ही रहेगी।

दरअसल हमारे पास जो चीज़ होगी वह एक मोटर कार जैसी होगी जिसमें इंजन और ईंधन तो होगा मगर वह गैरेज में खड़ी है। जिस तरह से कार के इंजन को चालू करना पड़ता है, उसी तरह लाल रक्त कोशिकाओं में प्रविष्ट कराए गए डी.एन.ए. को भी चालू करना पड़ेगा। और यह करोड़ों डॉलर का सवाल है कि यह काम कैसे किया जाए। और डॉ. क्रेग वेंटर यही जंग तो जीतने का प्रयास कर रहे हैं। उन्होंने प्रयोगशाला में *एम. जेनेटेलिया* नामक बैक्टीरिया का जीनोम बना लिया है, मगर उसे चालू करने की जद्दोजहद जारी है।

वास्तव में जीनोम के इंजन को किक मारकर स्टार्ट करना ही वह चीज़ है जिसे हम समझने की कोशिश कर रहे हैं। और जो व्यक्ति इस काम का तरीका खोज लेगा/लेगी, वही जीवन को 'स्टार्ट' करेगा/करेगी। एक बार ऐसी कोशिका सजीव हो गई, तो उम्मीद की जाती है कि यह अपने रचनाकार वैज्ञानिकों के सहारे के बगैर चल निकलेगी।

एक और सवाल यह है कि यदि ऐसा हुआ तो क्या हम यह कहेंगे कि वैज्ञानिकों ने एक मृत तंत्र में 'जीवनी

शक्ति' डाल दी है। फौरी जवाब होगा कि नहीं, उस वैज्ञानिक ने तो मात्र उस चीज़ को दोहराया है जो कुदरती शक्तियों ने करीब साढ़े तीन अरब वर्ष पहले शुरू की थी, जब विकिरण या पराबैंगनी प्रकाश या आयनिक धाराओं ने तथाकथित 'आदिम शोरबे' (प्रायमोर्डियल सूप) में खलबली पैदा कर दी थी और वहां डी.एन.ए. युक्त झोले बन गए थे।

अब चाहें तो आप इस क्रिया को जीवनी शक्ति कहें या कुछ और कहें, यह आपके विश्वासों का मामला है। मगर ज़्यादा तात्कालिक व महत्व का तथ्य यह है कि हम प्रयोगशाला में इस तरह के जीवन के निर्माण के काफी नज़दीक हैं। सवाल तब और पेचीदा हो जाते हैं जब हम इन प्रयोगों को आगे बढ़ाकर उच्चतर जीवों पर दोहराने की बात करते हैं। पौधे और बैक्टीरिया तक तो ठीक है। उनमें मस्तिष्क नहीं है और न ही तंत्रिका तंत्र है। लिहाज़ा वे सोचते नहीं हैं बल्कि उनमें तो किसी भी चीज़ के प्रति तयशुदा तरीकों से प्रतिक्रिया देने की व्यवस्था होती है। ये प्रतिक्रियाएं चाहे कितनी भी पेचीदा हों, मगर होती हैं तयशुदा। सदियों से हम कलमें लगा-लगाकर और यहां तक कि क्लोनिंग के ज़रिए भी नए-नए पेड़-पौधे बनाते रहे हैं। बोन्साई को तो कलात्मक नज़र से देखा जाता है।

यदि ऐसे जंतुओं की बात करें, जिनमें केंद्रीय तंत्रिका तंत्र होता है और सक्रिय मस्तिष्क होता है, तो हम सीखने, निर्णय लेने, आत्म-जागरूकता और चेतना के दायरे में पहुंच जाते हैं। कुछ जंतुओं के मामले में भी हम मनमज़्जी से उनमें प्रजनन का नियंत्रण करते रहे हैं और मनपसंद नस्लें बनाते रहे हैं।

मगर जब प्रायमेट्स और इन्सानों की बात आती है, तो हम कहीं ज़्यादा मानव-केंद्रित हो जाते हैं। तब हम पूछते हैं (और सही पूछते हैं) कि क्या ऐसा करना नैतिक दृष्टि से सही होगा। (*स्रोत फीचर्स*)

## स्रोत सजिल्द

वर्ष 2008 के सारे अंक एक जिल्द में उपलब्ध हैं